सन्तराम वत्स्य

चरित्र-निर्माण की कहानियाँ

चरित्र-निर्माण की कहानियाँ

• •

सन्तराम वत्स्य

• •

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

कथा-क्रम

१.	परीक्षा	३
२.	राह के रोड़े	६
३.	जैसा कहोगे, वैसा सुनोगे	११
४.	आज्ञाकारी कासाब्यांका	१५
५.	भाई हों तो ऐसे	१८
६.	कर्त्तव्यनिष्ठ बालक	२१
७.	सत्यवादी अब्दुल कादिर	२४
८.	नेपोलियन की सचाई	२८
९.	जो पढ़ो, उसको गुणो भी	३२
१०.	भाग्य नहीं, पुरुषार्थ	३९

नेशनल पब्लिशिंग हाउस
२३, दरियागंज, दिल्ली-११०००६
द्वारा प्रकाशित

द्वितीय संस्करण, १९७५ : मू

नेशनल पब्लिशिंग हाउस
रु 5/50

सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस,
मौजपुर, शाहदरा, दिल्ली-११००५३
में मुद्रित

परीक्षा

सैकड़ों वर्ष पुरानी बात है। वाराणसी में एक बड़े विद्वान् ब्राह्मण रहते थे। उनके पास कितने ही छात्र पढ़ने आते। वे सभी को मन लगाकर पढ़ाते और ज्ञान की बातें बताते।

पुस्तकें पढ़ाने के साथ-साथ पंडितजी इस बात का विशेष ध्यान रखते, कि उनके शिष्यों का चाल-चलन भी सुधरे। वे जो कुछ पढ़ाते उस के अनुसार ही आचरण करने के लिए भी कहते। उनका कहना था कि शास्त्र को पढ़कर यदि हम अपने आचरण को न सुधारें तो पढ़ना-लिखना बेकार है।

पंडित जी की एक बेटी थी। उसका नाम था सुशीला। सुशीला की उमर विवाह के योग्य हो गई थी। इसलिए पंडित जी उसके लिए किसी योग्य वर की खोज कर रहे थे।

एक दिन पंडिताइन ने पंडित जी से कहा, "आप जो इधर-उधर बेटी के लिए लड़का खोज रहे हैं, क्या आपके शिष्यों में से कोई ऐसा नहीं है, जिसके साथ इसका विवाह किया जा सके ?"

बात पंडित जी को जंच गई। अब वे सोचने लगे कि किस शिष्य के साथ कन्या का विवाह करें। अन्त में उन्होंने निश्चय किया कि सबकी परीक्षा लेकर देख लेना उचित होगा। जो परीक्षा में सबसे आगे होगा, उसी से अपनी पुत्री का विवाह करूँगा। उन्होंने मन ही मन परीक्षा लेने की एक योजना बनाई।

एक दिन सारे बड़े-बड़े छात्रों को बुलाकर पंडित जी ने कहा, "मेरी लड़की की उमर विवाह योग्य हो गई है। मैं शीघ्र ही उसका विवाह कर देना चाहता

हूँ। पर मेरे पास दहेज में देने के लिए कुछ भी नहीं है। इसलिए तुम सब अपने-अपने घर जाओ और सब की आंख बचाकर बढ़िया-बढ़िया नए कपड़े और गहने ले आओ। पर यह काम इस तरह करना कि कोई देख न ले। यदि किसी ने देख लिया, तो मैं उन चीज़ों को नहीं लूंगा।"

गुरु जी की आज्ञानुसार कार्य करने का वचन देकर सभी छात्र अपने-अपने घर चले गए। वे कुछ दिन घर रहे और घरवालों की आँख बचाकर चुपके से गहने-कपड़े चुरा लाए।

पंडित जी के पास गहनों-कपड़ों का अच्छा-खासा ढेर लग गया। पंडित जी हर छात्र की लाई हुई चीज़ों को अलग-अलग रखते गए।

एक को छोड़कर सभी छात्र कुछ न कुछ चुरा लाए थे। जो छात्र खाली हाथ लौट आया था, पंडित जी ने उसे बुलाकर पूछा, "तुम तो कुछ भी नहीं लाए। क्या तुम्हारे घर पर कुछ भी नहीं था?"

"घर में तो बहुत कुछ था, पर मैं ला नहीं सका।" उस छात्र ने नम्रता के साथ उत्तर दिया।

"बहुत कुछ था, फिर ला क्यों नहीं सके?" पंडित जी ने प्रश्न किया।

"आपने कहा था कि सब की आँख बचाकर लाना। कोई देख न ले। जहां कोई नहीं देखता था, वहां भी मेरी आंखें तो देखती ही थीं। और फिर आपने यह भी बताया था कि भगवान् सब-कुछ देखता है। उससे तो कुछ भी छिपा नहीं रहता। उसकी आंख बचाकर कैसे कुछ लाया जा सकता था!"

पंडित जी इस छात्र पर बहुत प्रसन्न हुए। वे समझ गए कि यही एक ऐसा है जिसने मेरी शिक्षा को ठीक-ठीक समझा है। फिर वे कहने लगे, "बेटा, मुझे चोरी के गहने-कपड़े नहीं लेने थे। मैंने तो तुम सबकी परीक्षा लेने के लिए ही यह योजना बनाई थी। तुम में से मेरी शिक्षाओं को किसने अच्छी तरह समझा है, यही मैं जानना चाहता था।

"इस परीक्षा में तुम पास हुए और बाकी सारे फेल। मैं चाहता हूँ कि मेरी

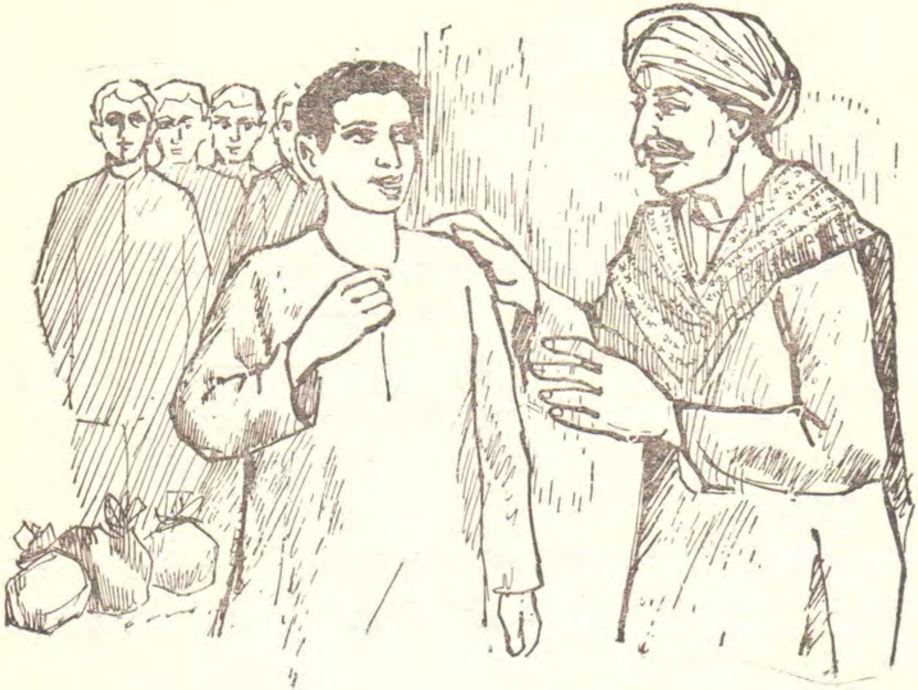

बेटी का विवाह तुम्हारे साथ हो। इसके लिए मैं तुम्हारे माता-पिता से बात करूँगा।"

बाकी छात्रों को बुलाकर कहने लगे, "तुम सब जो-जो कुछ लाए हो, उसे वापस अपने घर ले जाओ। मुझे जिसकी जरूरत थी, वह मिल गया।"

राह के रोड़े

बात ज़रा पुरानी है। चतुरसेन नाम का एक बड़ा भला राजा था। सारी प्रजा उसे चाहती थी। वह सबके साथ न्याय करता। प्रजा की भलाई के काम करता। उसकी प्रजा में एक भी भूखा-नंगा न था। उसके राज्य की सीमा शत्रुओं से सुरक्षित थी। वह भी दूसरे राज्यों पर आक्रमण नहीं करता था। उसके राज्य में अन्न-धन किसी चीज़ की कमी न थी। लोग कहते कि यही 'राम-राज्य' है।

चीज़ें सस्ती थीं। उपजाऊ धरती होने के कारण किसानों को भी अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ता था। व्यापार भी खूब होता था। सभी प्रसन्न और संतुष्ट थे।

धीरे-धीरे लोग आलसी बनने लगे। कठोर परिश्रम की उनकी आदत तो छूट ही गई, अब थोड़ा परिश्रम करने में भी उन्हें कष्ट होता।

राजा ने देखा, राजकाज ठीक समय पर नहीं होते। राजा के मन में आया कि देखूं, 'प्रजा का क्या हाल है ?' उसी दिन शाम को राजा वेश बदलकर घूमने निकला। वह अभी महल से थोड़ी ही दूर निकला था कि पाँव में जोर की ठोकर लगी। खून बहने लगा। राजा ने देखा कि सड़क के बीचोंबीच एक बड़ा-सा पत्थर पड़ा हुआ है। उसने उसे रास्ते से उठा कर दूर फेंक दिया।

राजा आगे बढ़ा। आगे फिर वही हाल ! जगह-जगह पत्थर पड़े हुए हैं। सड़क में जगह-जगह गड्ढे हैं। आने-जाने वालों को खूब ठोकरें लग रही हैं। पर ठोकर लगने पर भी कोई पत्थरों को सड़क से उठाता नहीं, पत्थर फेंकने वाले

को एक-दो गालियां निकालता और बड़-बड़ाता हुआ चला जाता है।

ठोकरें खा-खाकर कितनों के पैरों की उंगलियों से खून बहा, कितनों के सिर फूटे, कितनों ने ही मुंह के बल गिरकर दांत तुड़ाए, पर क्या मजाल जो किसी ने पत्थर उठाए हों। गिरने पर उठे, कपड़ों की धूल झाड़ी

और गालियां बकते चले गए।

राजा प्रजा की यह हालत देखकर बहुत दु:खी हुआ। उसने सोचा, सभी दूसरों को दोषी ठहराते हैं, पर कोई माई का लाल इन राह के रोड़ों को उठाकर नहीं फेंकता।

राजा को घूमते-घूमते रात हो गई। सड़क पर लोगों का आना-जाना बन्द-सा हो गया। सड़क पर एक जगह गड्ढा पड़ गया था। पास ही पत्थर भी पड़े हुए थे। राजा ने रुपयों की थैली इस गढ़े में रख दी और पास पड़े पत्थर ऊपर रख दिये। थैली पत्थरों के नीचे दब गई।

दूसरे दिन राजा वेश बदलकर उसी जगह पहुंचा। वह सड़क के किनारे खड़ा हो गया। कुछ ही देर बाद एक ग्वाला अपनी गाएं-भैंसें लिए आया। उसे गढ़े में पड़े पत्थर से जोर की ठोकर लगी। पांव से खून बहने लगा। वह चलते-चलते बोला, "न जाने किस दुष्ट ने यह पत्थर फेंक दिया है। लोगों को इतनी भी समझ नहीं है कि रास्ते में पत्थर नहीं फेंकना चाहिए।"

थोड़ी ही देर बाद एक गाड़ीवान आ पहुंचा। पत्थर से ठोकर खाकर, बैल का पैर रपट गया। पर गाड़ीवान बैल को उठने में सहायता देने के लिए नीचे नहीं उतरा। उल्टे बैल को ही पीटने लगा। किसी तरह बैल संभल गया और गाड़ी आगे बढ़ गई। गाड़ीवान बड़बड़ाने लगा, "यहाँ के लोग भी बड़े आलसी हैं। अगर इन रोड़ों को उठा देते तो क्या उनके हाथ घिस जाते।"

दूसरे दिन राजा की सवारी निकली। कोचवान ने रथ को एकदम मोड़ना चाहा, जिससे एक घोड़े को पत्थर की ठोकर लगी। ऊपर से कोचवान ने चाबुक फटकारा। घोड़ा गिरते-गिरते बचा। कोचवान भी यह कहते हुए आगे बढ़ गया कि राज्य के कर्मचारी करते-धरते कुछ नहीं, मुफ्त में वेतन पाते हैं।

पत्थर वहीं पड़ा रहा!

तीसरे दिन कुछ व्यापारी उस रास्ते से निकले। उनमें से एक को बड़े जोर की ठोकर लगी। गिरने से उसके सारे कपड़े धूल से भर गए। माथे और पैर

से लहू बहने लगा । वह भी कपड़ों को झाड़ता-पोंछता उठ खड़ा हुआ ।

व्यापारी आपस में यह कहते हुए कि यहाँ के लोग एकदम निकम्मे हैं, किसी को अपने काम का ध्यान नहीं, आगे बढ़ गए ।

इसी तरह पूरे सात दिन बीत गए पर पत्थर को किसी ने नहीं हटाया ।

आठवें दिन राजा ने ढिंढोरा पिटवाया कि आज शाम को एक सभा होगी । सब लोग उसमें आएं । सभा के लिए स्थान उस गढ़े के पास ही निश्चित किया गया । शाम को वहां खूब भीड़ जमा हो गई पर किसी को भी पता नहीं था कि सभा किस लिए हो रही है । जब राजा चतुरसेन सभा में पधारे तो सब लोग उठ खड़े हुए और तालियां पीटने लगे ।

कार्यवाही शुरू हुई । राजा ने कहना शुरू किया, "प्यारे प्रजाजनो ! आप में से बहुतों ने सड़क पर पड़े हुए उस पत्थर को अवश्य देखा होगा ?"

यह सुनना था कि लोग खड़े होकर बड़ी उतावली से कहने लगे, "इसकी ठोकर से मेरे पैर का तो अंगूठा ही टूट गया ।"

दूसरे ने कहा, "यह देखिये महाराज, मेरे सिर पर अभी तक पट्टी बंधी हुई है । मुझे इसी पत्थर से ठोकर लगी थी ।"

तीसरे ने कहा, "इससे ठोकर खाकर मेरे बैल की टाँग में चोट आ गई है ।"

चौथे ने कहा, "इससे मुझे इतने जोर की ठोकर लगी थी कि गिरने से मेरे अगले दाँत ही टूट गए ।"

एक और बोल पड़ा, "यह सब राजकर्मचारियों का दोष है । वे सड़कों की मरम्मत नहीं करते । जगह-जगह सड़कें टूटी पड़ी हैं, पर कोई ध्यान नहीं देता ।" राजा ने सबको बोलने दिया । फिर कहा, "कितने ही लोगों को ठोकरें लगीं—किसी का सिर फूटा, तो किसी का दाँत टूटा । परन्तु आप में से किसी ने भी उसे उठाकर फेंकने का कष्ट नहीं किया ।

"यह पत्थर मैंने रखा था, यह जानने के लिए कि कोई इसे उठाता है या

नहीं। इस पत्थर के नीचे मैंने रुपयों की थैली भी रख दी थी। यदि कोई इस पत्थर को हटाता तो उसे वह थैली अवश्य मिलती।"

यह सुनते ही सबके सिर लज्जा के मारे झुक गए। राजा ने नौकर भेजकर वह थैली मंगवा ली और पत्थर को एक ओर फिंकवा दिया।

सभा से अपने घरों को वापस जाते समय लोगों को सड़क पर जो पत्थर दिखाई दिए, उन्होंने वे सब उठाकर एक ओर फेंक दिए।

दूसरे दिन सड़क की मरम्मत करने वाले कर्मचारी भी गड्ढों को ठीक करने लगे।

जैसा कहोगे, वैसा सुनोगे

हिमालय की तराई में एक गांव था। इस गांव में गड़रियों के बहुत-से घर थे। गड़रिये भेड़-बकरियां पालते हैं। भेड़ों की ऊन बेचकर और भेड़-बकरियाँ बेचकर वे अपनी जीविका चलाते हैं।

इसी गांव में जोगी नाम का एक गड़रिया रहता था। उसका एक लड़का था सूरज। सूरज माता-पिता का पहला पुत्र था। इसलिए वे उसे बहुत प्यार करते। अधिक लाड़-प्यार के कारण वह बिगड़ने लगा। कुछ संगत भी खोटी मिल गई। वह हर बात में मनमानी करता। जिस बात के लिए अड़ जाता उसे कराके छोड़ता। अगर उसकी बात नहीं मानी जाती तो बिगड़ जाता। गालियां बकने लगता। अबे-तबे बोलता। छोटे-बड़े का कुछ भी विचार नहीं करता। माता-पिता पहले तो लाड़-प्यार में बुरा नहीं मानते थे। सोचते बड़ा होकर सब समझ जाएगा। पर वह ज्यों-ज्यों बड़ा होता गया, और भी बिगड़ता गया। उसकी ज़बान में जैसे जहर भरा हुआ था। कड़वी और गन्दी बात कहने में उसे बड़ा मज़ा आता। दो-चार बार वह इसी बुरी आदत के कारण अपने साथियों से पिटा भी पर एक बार जो आदत पड़ जाए वह आसानी से जाती थोड़े है!

एक दिन उसके पिता जोगी को बुखार हो गया। उसने सूरज को बुलाकर कहा कि मेरी तबियत ठीक नहीं है। आज तुम्हीं भेड़-बकरियों को चराने जंगल ले जाओ। पड़ोस के और लोग भी जा रहे हैं। उन्हीं के साथ-साथ चले जाओ।

सूरज भेड़-बकरियां बाड़े से निकालकर ले गया। मुरली बजाता वह जंगल की ओर बढ़ता रहा। मुरली बजाने का उसे बहुत शौक था। विशेषकर जब वह अकेला होता।

वह चरागाह में जा पहुंचा। भेड़-बकरियां चरने लगीं। पर संभवतः आप नहीं जानते, भेड़-बकरियां झाड़ियों के पत्ते चरतो जाती हैं और आगे-आगे बढ़ती जाती हैं। सूरज अपनी धुन में मस्त मुरली बजाता रहा और भेड़-बकरियां सीधी पहाड़ी कटान के नीचे जा पहुंचीं। पास ही दीवार की तरह सीधा-सपाट टीला खड़ा था।

मुरली की तान बजाने के बाद जब उसने देखा तो भेड़-बकरियां ओझल। वह तेज़ी से भागा और उनके पास पहुंचा। यहां से आगे बढ़ना असंभव था क्योंकि सामने दीवार-सा खड़ा एक टीला था।

सूरज ने फिर मुरली निकाली। बड़ी सुरीली तान उसने बजाई। पर यह क्या ! यह दूसरा कौन है जो बिलकुल उसी की नकल करता हुआ मुरली बजा रहा है। बस, सूरज को क्रोध आ गया।

वह जोर से चिल्लाया, "यह कौन है जो मेरी नकल उतार रहा है ?"

सामने से आवाज आयी, 'यह कौन है जो मेरी नकल उतार रहा है ?'

अब सूरज का क्रोध और भी भड़क उठा। वह और भी चिल्लाकर बोला, "चुप होता है या नहीं !"

फिर आवाज आयी, 'चुप होता है या नहीं !'

अब तो सूरज आपे से बाहर हो गया। वह गर्जा, "यह कौन उल्लू का पट्ठा है जो मेरी नकल उतार रहा है।" उत्तर मिला, 'यह कौन उल्लू का पट्ठा है, जो मेरी नकल उतार रहा है !'

सूरज क्रोध के मारे कांपने लगा। उसकी आंखें लाल हो गईं। अब तो उसने गन्दी से गन्दी गालियों की बौछार शुरू कर दी।

उधर से उत्तर में ठीक वैसी ही गन्दी गालियां सुनने को मिलीं।

वह गालियां बकता आवाज की दिशा में ढूंढ़ता रहा पर उसे कोई दिखाई नहीं दिया। हां, गालियां अब भी हूबहू दोहराई जा रही थीं।

सूरज बढ़-बढ़कर गालियां बकता रहा और वैसी ही उत्तर में सुनता रहा। गालियां बकते-बकते उसका गला सूख गया। खीझ और क्रोध ने उसे थका दिया।

शाम को वह भेड़-बकरियों का रेवड़ लेकर घर आया। उन्हें बाड़े में बन्द किया। क्रोध और खीझ के चिह्न अब भी उसके चेहरे पर स्पष्ट दिखाई दे रहे थे।

उसके पिता जोगी का बुखार उतर गया था और वह उठ बैठा था।

सूरज ने पिता से कहा, "उस घाटी में कोई छिपा हुआ है। उसने मुझे बहुत खिझाया। वह बराबर मेरी नकल उतारता रहा। मैंने उसे ऐसी-ऐसी गालियां सुनाईं कि याद करेगा। पर जो-जो गालियां मैंने उसे दीं, वही ज्यों की त्यों उसने दोहरा दीं।

"मैंने उसे बहुत खोजा, पर वह मिला नहीं। मिलता तो बच्चू को ऐसी मार देता, ऐसी मार देता कि हड्डी-पसली एक हो जाती।"

उसके पिता ने सारी बात समझ ली। वह उसे समझाते हुए बोला, "बेटा सूरज, वहां कोई भी नहीं था। वह तो तेरी आवाज की प्रतिध्वनि थी।

"बात यह है कि वहां सामने की ओर सपाट-सीधा टीला खड़ा है। जब कोई बोलता है तो आवाज की लहरें उससे टकराकर वापस लौट आती हैं और प्रतिध्वनि सुनाई देती है।"

सूरज को यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। "क्या आप सच कह रहे हैं? वहां कोई भी नहीं था। वह मेरी ध्वनि की प्रतिध्वनि थी।" सूरज ने कहा।

जोगी ने समझाते हुए कहा, "हां, बेटा, मैं सच कह रहा हूं। इससे तुम्हें एक सीख लेनी चाहिए। अगर तुम दूसरों को कड़वे-गन्दे शब्द बोलोगे तो तुम्हें भी वैसे ही शब्द सुनने पड़ेंगे। और अगर मुरली के स्वर की तरह मीठा बोलोगे

तो मीठा ही सुनोगे। बेटा, यही दुनिया का व्यवहार है। जैसे को तैसा।

"इसलिए किसी से कड़वा क्यों बोलो। मीठा बोलने में कुछ खर्च थोड़े ही होता है। लोगों के प्रति सम्मान दिखाने के लिए 'श्री', 'जी' आदि एकाध शब्द अधिक भी बोलना पड़े तो भी क्या हानि है। यह कोई जेब के पैसे थोड़े हैं जो कम हो जाएंगे।"

सूरज समझ गया। उस दिन से उसने लोगों से मीठा बोलना प्रारंभ कर दिया।

आज्ञाकारी कासाब्यांका

दो देशों में युद्ध छिड़ गया था। उनके समुद्री जहाज़ एक-दूसरे पर गोले बरसा रहे थे। एक जहाज़ पर पिता और उसका तेरह वर्ष का पुत्र दोनों काम करते थे।

तोप के गोले से इस जहाज़ में आग लग गई। पिता ने अपने पुत्र कासाब्यांका को एक मस्तूल के पास खड़े रहने की आज्ञा दे रखी थी और कहा था कि जब तक मैं न कहूं, इस जगह से न हटना।

तेरह साल की उमर क्या होती है! पर दृढ़ चरित्र का उमर से क्या सम्बन्ध! कासाब्यांका ने इस छोटी उमर में ही इतना बड़ा काम कर दिखाया कि आज उसका नाम सारा संसार जानता है। उसका नाम आज्ञापालन और कर्तव्यपालन का उदाहरण बन गया है। अपने प्राण देकर भी उसने पिता की आज्ञा का पालन किया। उसका नाम सदा-सदा के लिए अमर हो गया है।

पुत्र को आज्ञा देने के बाद पिता जलते जहाज़ में मर चुका था। दूसरे जहाज़ी नौकाओं पर सवार होकर भाग रहे थे। उनमें से कइयों ने कासाब्यांका को भी कहा कि जहाज़ में आग लग गई है और वह जहाज़ को छोड़ दे। पर वह अपनी जगह से नहीं हटा, नहीं हिला। उसे तो पिता की आज्ञा का पालन करना था।

आग बढ़ रही थी। धुआं और लपटें आकाश को छू रही थीं। सब लोग जान बचाकर जहाज़ से कूद रहे थे। उनमें से कितने ही भागते हुए आग की लपेट में आकर मर गए। कुछ दूसरे जो पानी में कूद गए थे, डूब गए। कई

ऐसे भी थे जो नौकाओं द्वारा अपने प्राण बचाने में सफल हो गए ।

कासाब्यांका जोर-जोर से अपने पिता को पुकार रहा था। वह कह रहा था, "पिताजी ! पिताजी !! मुझे बताइये, मैं अब क्या करूं ? यहीं खड़ा रहूं या चला जाऊं ? क्या मेरा यहां खड़ा होना ज़रूरी है ?"

वह क्या जानता था कि उसका पिता मर चुका है। वह उसकी पुकार नहीं सुन सकता। उसकी पुकार का उत्तर नहीं दे सकता।

जो भी जहाज़ी उसके पास से गुज़रता, उसे भाग चलने के लिए कहता पर एक वह था कि अपने पिता की आज्ञा के बिना हट नहीं रहा था।

अब आग की लपटें बिलकुल उसके पास आ गईं। बेचारा बालक ज़ोर-ज़ोर से पिता को पुकारता रहा। वह जानना चाहता था कि वह वहां से हट जाए या खड़ा रहे। वह बोल रहा था, "पिताजी, आग मेरे पास पहुंच गई है। क्या मैं यहीं खड़ा रहूं या चला जाऊं! यहां मेरे खड़े रहने की आवश्यकता है? पिताजी! पिताजी!! पिताजी!!!"

कोई उत्तर नहीं मिला। कोई उत्तर नहीं मिलना था। उत्तर देने वाला पहले ही मर चुका था।

बालक ब्यांका के फूल जैसे कोमल शरीर को लपटें झुलसाने लगी थीं। धुएं से उसका दम घुट रहा था। पर वह अपनी जगह से नहीं हिला। उसे उसके पिता ने जो आज्ञा दी थी, उसने उसका अक्षरशः पालन किया।

ब्यांका जल गया। ऊंची उठ रही लपटों ने उसकी यश की पताका आकाश में फहरा दी।

एक ज़ोरदार धड़ाका हुआ और जहाज़ के टुकड़े-टुकड़े हो गए। इस आज्ञाकारी बालक की राख सागर में बह गई और जितनी धरती को सागर ने घेर रखा है, उतनी धरती में ब्यांका की बलिदान-कथा कह आयी।

भाई हों तो ऐसे

लगभग पांच सौ वर्ष पुरानी बात है। एक जहाज़ में सौ यात्री सवार थे। कई दिन यात्रा करते हो गए थे। पर अभी कई दिनों की यात्रा शेष थी। एक दिन पानी में छिपी चट्टान से टक्कर खाकर जहाज़ टूट-फूट गया और डूबने लगा।

सब यात्री घबरा उठे। एकदम खलबली मच गई। जहाज़ में एक ही नौका थी। कप्तान ने उसे पानी में उतारा और कुछ खाने-पीने की चीज़ें उस पर उतार दीं। उन्नीस यात्री उस पर सवार हुए। बाकी यात्री भी नौका पर चढ़ने का यत्न करने लगे। अगर सबको चढ़ने दिया जाता तो नौका डूब जाती और एक भी आदमी जीवित न बचता। इस लिए कप्तान ने तलवार निकाल ली और बाकी यात्रियों को नौका पर चढ़ने से रोक दिया।

उन्नीस यात्रियों को लेकर नौका चल पड़ी। पर हड़बड़ी के कारण कप्तान अपना दिशासूचक यंत्र जहाज़ पर ही भूल आया था। खाने का कुछ सामान तो नाव पर रख लिया गया था पर पीने का पानी जहाज़ में ही रह गया था। बिना पीने के पानी के खारे समुद्र में यात्रा करना सरल काम नहीं था।

जहाज़ का कप्तान पिछले दिनों से बीमार था। वह चार दिन बाद चल बसा। अब इस दिशाहीन और जलहीन नौका की स्थिति और भी बिगड़ गई। कप्तान के अभाव में सब अपनी मनमानी करने लगे। पर इस

तरह काम नहीं चल सकता था। सबने यात्रियों में से एक बुजुर्ग को मुखिया चुन लिया।

यात्रियों में से कोई नहीं जानता था कि हम कहाँ जा रहे हैं। किनारा कब मिलेगा, कोई नहीं जानता था। खाने की सामग्री भी कुछ ही दिनों के लिए थी। नए मुखिया ने सारी परिस्थिति सबको समझाई। निश्चय हुआ कि अठारह में से चार लोगों को समुद्र में डाल देना चाहिए जिससे बाकी लोगों का जीवन बच सके। कौन-से चार मरें, इसका फैसला पर्ची निकालकर किया गया।

जिन चार की मरने की बारी थी, उनमें से तीन तो तुरंत मरने के लिए तैयार हो गए पर चौथे का छोटा भाई भी नौका में सवार था, वह बड़े भाई को नौका से कूदने के लिए तैयार देखकर उसके गले मिला और रोते-रोते बोला, "भाई, मैं तुम्हें मरने नहीं दूँगा। तुम्हारे बदले मैं समुद्र में कूदूंगा। तुम्हारी पत्नी है और बच्चे हैं। इसके अतिरिक्त तीन बहनें हैं। तुम उन्हें पाल-पोस लोगे। मैं कुंवारा हूं, इसलिए मैं मरूंगा।"

बड़ा भाई छोटे भाई की बात सुनकर चकित हो गया। वह बोला, "तुम मेरे छोटे भाई हो और मुझे प्राणों से भी प्यारे हो। तुम मेरे बदले मर भी गए तो मैं तुम्हारे मरने के दुःख से ही मर जाऊंगा। इसलिए तुम ज़िद न करो और मुझे कूदने दो।"

पर छोटे भाई ने एक नहीं मानी। वह पैरों पर गिरकर रोने लगा। बड़े भाई ने बहुत समझाया पर वह नहीं माना। अन्त में बड़े भाई को छोटे भाई की बात माननी पड़ी।

चारों आदमी नाव से छलांग लगाकर समुद्र में कूद गए। उनमें से तीन तो एकदम डूब गए पर यह छोटा भाई युवक होने के कारण तैरने लगा। वह नाव के आस-पास ही तैर रहा था। भाई-भाई के प्रेम के इस दृश्य को देखकर नौका में सवार सभी यात्रियों के दिल भर गए थे। सभी की आंखें आंसुओं से गीली हो गईं।

उन्होंने निश्चय किया कि हमारा चाहे जो कुछ हो पर भाइयों की इस जोड़ी को बिछुड़ने न दिया जाए। ऐसा भातृ-प्रेम संसार में दुर्लभ है। उन्होंने तैरते भाई को पास बुला लिया और नौका पर खींच लिया।

रात हो रही थी। नौका रात भर दिशाहीन-सी चलती रही। प्रभात का सूर्य इन संकटग्रस्त यात्रियों के लिए आशा का नया सन्देश लेकर आया। ज्यों ही अरुणोदय हुआ, उन्हें तट दिखाई देने लगा। अब तो सब की हिम्मत बंध गई। पूरा ज़ोर लगाकर वे नाव खेने लगे।

कुछ देर बाद नौका अफ्रीका के मोज़ाम्बिक पर्वत के पास आ लगी। सबने भगवान् का लाख-लाख धन्यवाद किया और हर्ष के आंसुओं से उनकी आंखें छलछला आयीं।

कर्त्तव्यनिष्ठ बालक

बात विलायत की है। निर्धन घर का एक छोटा लड़का पड़ोस के एक बड़े जमींदार के पास खेतों की रखवाली का काम करता था। खेती को उजाड़ने वाले जानवरों से बचाना उसका काम था।

एक दिन वह खेतों की रखवाली कर रहा था कि उसे दूर से कुछ घुड़सवार आते दिखाई दिये। ये घुड़सवार इन खेतों की ओर बढ़े आ रहे थे। लड़के ने सोचा कि अगर ये इन खेतों में से होकर गुजरे तो घोड़ों के सुमों से फसल रौंदी जाएगी और बड़ी हानि होगी।

खेतों के चारों ओर बाड़ लगी हुई थी। एक जगह भीतर जाने के लिए फाटक था। लड़के ने तुरंत उस फाटक को बन्द कर दिया ताकि घुड़सवार अन्दर न आ सकें।

फाटक बन्द करके वह वहीं खड़ा हो गया। थोड़ी ही देर में घुड़सवारों का यह दल फाटक के पास आ पहुंचा। फाटक बन्द देखकर वे वहां रुक गए।

लड़के ने उन्हें ध्यान से देखा। वे फौजी वर्दी में थे और कोई ऊंचे अधिकारी जान पड़ते थे। पर लड़का उनके बड़प्पन से डरा नहीं।

सबसे आगे जो घुड़सवार था, वह उन सबसे बड़ा अधिकारी लगता था। उसकी वर्दी पर लगे तरह-तरह के फौजी निशान धूप में चमक रहे थे। कंधे से पिस्तौल की पेटी लटक रही थी। दूसरों के पास भी पिस्तौलें और बन्दूकें थीं।

अगले घुड़सवार ने लड़के को फाटक खोलने के लिए कहा। पर लड़के ने साफ और दृढ़ स्वर में फाटक खोलने से इनकार कर दिया। उसने कहा, "मुझे

मेरे मालिक की आज्ञा है कि मैं इन खेतों की रखवाली करूं। अगर मैं घोड़ों को खेतों में से जाने देता हूं तो ये खेती को रौंद डालेंगे। मैं इस फाटक को नहीं खोलूंगा।"

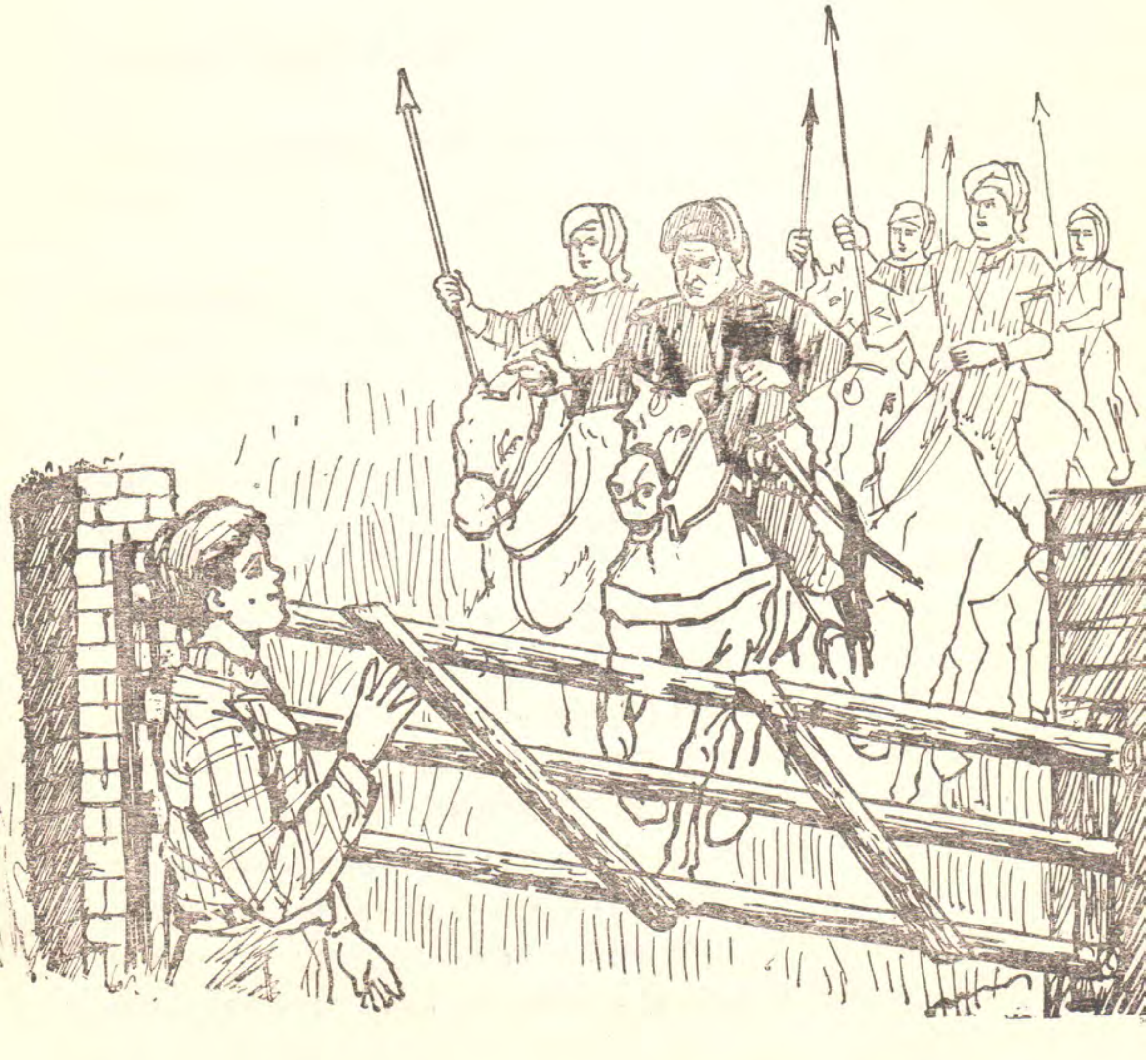

उस घुड़सवार को इस छोटे-से लड़के का यह उत्तर अच्छा नहीं लगा। उसने कड़ककर कहा, "मैं तुम्हें आज्ञा देता हूं कि तुरंत फाटक खोल दो !"

लड़का फिर भी नहीं घबराया। उसने कहा, "मैं यहां खड़ा अपने मालिक की आज्ञा का पालन कर रहा हूं। आपकी आज्ञा कैसे मान सकता हूं !"

इस पर घुड़सवार ने उसे समझाते हुए कहा, "तुम नहीं जानते कि हम कौन हैं। मैं इस देश का सेनापति हूं। मैं तुम्हें आज्ञा देता हूं कि फाटक खोल दो !"

पर यह रखवाला लड़का फिर भी टस से मस नहीं हुआ। उसने सेनापति को नमस्कार किया। फिर बोला, "क्या सेनापति महोदय यह चाहेंगे कि मैं अपने मालिक की आज्ञा का उल्लंघन करूं ?"

सेनापति बालक का ऐसा करारा उत्तर सुनकर सोच में पड़ गया। उसने इस छोटे बालक के ऊँचे चरित्र की मन ही मन प्रशंसा की। फिर अपने साथियों को घोड़े पीछे की ओर मोड़ने की आज्ञा दी।

उसने पीछे मुड़ते-मुड़ते अपने साथियों से कहा, "अगर ऐसे आज्ञाकारी एक हज़ार जवान मुझे मिल जाएं तो मैं संसार को विजय कर सकता हूं।"

सत्यवादी अब्दुल कादिर

ईरान के जीलान नामक नगर में, आज से लगभग नौ सौ वर्ष पहले हजरत सैयद अबी खालह नाम के एक सज्जन रहते थे। वे पैसे-धेले से तो खाली थे लेकिन गुणों से भरपूर थे। विद्वानों में उनका अच्छा मान था। दूसरों का दु:ख-दर्द दूर करने के लिए सदा तैयार रहते। सभी उन्हें आदर की दृष्टि से देखते थे। उनका एक ही पुत्र था। उसका नाम था अब्दुल कादिर।

अब्दुल कादिर के बचपन में उसके पिता चल बसे। अब्दुल कादिर पढ़ने-लिखने में बहुत तेज़ था। स्वभाव का भी सुशील था।

उसने जीलान नगर की पाठशाला में पढ़ाई समाप्त कर ली। वहाँ आगे की पढ़ाई की कोई व्यवस्था नहीं थी। वह आगे पढ़ना चाहता था। उन दिनों उच्च शिक्षा का केन्द्र बगदाद नगर था। वहाँ बड़े-बड़े विद्यालय थे और दूर-दूर से छात्र वहाँ पढ़ने आते थे। अब्दुल कादिर ने भी बगदाद में ही उच्च शिक्षा प्राप्त करने का निश्चय किया।

एक दिन अपनी बूढ़ी माँ से उसने अपने मन की बात कह सुनाई।

पुत्र की बात सुनकर माँ की आँखें डबडबा आयीं। वह नहीं चाहती थी कि उसका इकलौता बेटा माँ की आंखों से दूर रहे। और फिर कहां जीलान और कहां बगदाद ! इतनी दूर भेजने को माँ राजी न थी। वह घर में अकेली रहेगी और बेटा सैकड़ों मील दूर अनजाने लोगों के बीच रहेगा। कौन उसके खाने-सोने की चिन्ता करेगा ? अभी उसकी उमर ही कितनी है !

बेटे से उसने कहा, "किस लिए तुम इतनी दूर जाना चाहते हो ? हमें

दो रोटियां चाहिए, वे यहां भी मिल जाएंगी। तुम्हारे पिता होते तो मुझे कोई चिन्ता नहीं थी। अब मैं बुढ़िया यहां किसके भरोसे रहूँ? मेरी ज़िन्दगी का क्या भरोसा! पका फल हूँ। क्या मालूम कब गिर पड़ूँ। क्या मुझे तुम्हारे हाथ की मिट्टी भी नसीब नहीं होगी?"

अब्दुल कादिर ने माँ की बातें सुनीं। फिर कहने लगा, "मैं चाहता हूँ कि पढ़-लिखकर माता-पिता का नाम बड़ा करूं। अपना पेट तो कौवे-कुत्ते भी भर लेते हैं। और रही भरोसे की बात! भरोसा तो खुदा का ही रखना चाहिए। वही सबका मालिक है।"

बेटे की बातें बुढ़िया को जँच गईं। जाने की तैयारी होने लगी। खर्च के लिए बुढ़िया ने चालीस अशर्फियां बेटे की फतूही के भीतरी भाग में रखकर सी दीं ताकि किसी को पता न चले। जब मां-बेटा अलग होने लगे तो मां ने समझाते हुए कहा, "मेरे पास कुल ये ही अशर्फियां थीं। इन्हें सोच-समझकर खर्च करना। हां, मेरी एक बात गांठ बांध लो, कभी झूठ न बोलना। तुम पर कितनी ही विपत्ति आए, सच का दामन मत छोड़ना। अल्लाह सच बोलने वालों की सदा सहायता करता है।"

उन दिनों न तो आज जैसी सड़कें थीं, न मोटरें और न रेलें। यात्रा करना बड़े ही संकट का काम था। मार्ग की कठिनाइयों के अतिरिक्त चोर-डाकुओं का भय प्रतिक्षण बना रहता था। इसलिए वणिज-व्यवसाय करने वाले, जिन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर आना-जाना पड़ता था, इकट्ठे होकर यात्रा करते थे। उस मरुभूमि में सवारी और बोझ ढोने का काम ऊंटों से लिया जाता था। सैकड़ों ऊंटों के काफिले एक साथ चलते थे। इसी तरह का एक व्यापारियों का काफिला जीलान नगर से बगदाद की ओर जा रहा था। अब्दुल कादिर भी उसके साथ हो लिया।

काफिला पड़ाव पर पड़ाव डालता बगदाद की ओर बढ़ने लगा। एक सुनसान जंगल में डाकुओं के सशस्त्र गिरोह ने काफिले पर धावा बोल दिया।

उन्होंने व्यापारियों का सारा धन लूट लिया। खूब मार-पीट हुई। अब्दुल कादिर लड़का-सा था और पहनावे से भी गरीब लगता था। डाकुओं ने उसकी ओर ध्यान ही नहीं दिया।

एक डाकू की नज़र जब कादिर पर पड़ी तो उसने अपने साथियों को उसकी तलाशी लेने के लिए कहा। इस पर दूसरे ने कहा कि इस गरीब-से लड़के के पास क्या मिलेगा! तीसरे ने कहा कि पूछ तो लो! पूछने में क्या हर्ज है? इतने में दो-तीन डाकुओं ने अब्दुल कादिर को घेर लिया। उन्होंने उससे पूछा, "क्यों रे छोकरे! तुम्हारे पास भी कुछ है?"

अब्दुल कादिर के मन में आया कि कह दे, मेरे पास कुछ नहीं है। पर तभी उसे माँ की सीख याद हो आयी। उसने सच-सच कह दिया कि मेरे पास चालीस अशर्फियां हैं।

उसकी बात पर डाकुओं को विश्वास नहीं हुआ। पर जब उसने फतूही से निकालकर अशर्फियां उनके हवाले कीं तो वे और भी दंग रह गए।

उनके सरदार ने अब्दुल कादिर से पूछा, "तुमने स्वयं ही अशर्फियों की बात क्यों बता दी? तुम्हें इन के छिन जाने की परवाह नहीं है क्या?"

अब्दुल कादिर ने कहा, "परवाह क्यों नहीं है? मेरी मां की कुल यही जमा-पूंजी थी जो उसने मुझे पढ़ाई के खर्च के लिए दे दी। पर विदा होते समय उसने मुझसे यह भी कहा था कि सदा सच बोलना, क्योंकि सच बोलने वालों पर अल्लाह रहम करता है। इसलिए मैंने सच-सच कह दिया।"

यह सुनकर तो डाकुओं की आंखें मारे लज्जा के झुक गईं। उनका सरदार बोला, "साथियो, यह लड़का मां की आज्ञा का कितना मान करता है। यह अल्लाह की मेहरबानी हासिल करने के लिए बड़ी-से-बड़ी विपत्ति सहने को तैयार है। और एक हम हैं जो दिन-रात लोगों को सताते और लूटते हैं। हम

खुदा के सामने क्या मुँह लेकर जाएंगे ? हमें भी आज से खुदा की राह पर चलना चाहिए और बुरे कामों से परहेज करना चाहिए ।" यह कहते हुए उसने अब्दुल कादिर की अशर्फियां लौटा दीं । व्यापारियों का लूटा हुआ माल भी उन्होंने वापस दे दिया और उनसे अपने बुरे व्यवहार के लिए क्षमा मांगी ।

नेपोलियन की सचाई

एक बड़े मकान के सुन्दर बगीचे में दो भाई-बहन खेल रहे थे। वे खेल-खेल में एक-दूसरे के पीछे भागते दूर तक निकल गए। भाई का नाम था नेपोलियन और बहन का इलाइजा।

एक किसान कन्या सिर पर अण्डों की टोकरी रखे जा रही थी। इलाइजा उससे टकरा गई। किसान कन्या के सिर से अण्डों भरी टोकरी गिर पड़ी। अण्डे बिखर गए। कुछ फट गए, कुछ धूल से सन गए। लड़की रोने लगी।

इलाइजा उसे रोते देख डर गई और नेपोलियन से कहने लगी कि चलो, भाग चलें।

नेपोलियन ने कहा, "भागें क्यों ? बेचारी के सारे अण्डे खराब हो गए। इनका मूल्य इसे देना चाहिए।"

दोनों भाई-बहन बिखरे अण्डों को बटोरने में उसकी सहायता करने लगे।

बेचारी लड़की रुआंसी होकर कहने लगी, "मैं घर जाकर मां से क्या कहूंगी ! इनको बेचकर तीन दिन की रोटी का खर्च निकल आता, पर अब इन फटे और पिचके अण्डों को कौन खरीदेगा ?" वह फिर रोने लगी।

उसको चुप कराते हुए नेपोलियन ने अपनी जेब से तीन सिक्के निकाल-कर दिये। इस समय उसके पास यही तीन सिक्के थे। उसने यह भी कहा कि मेरे साथ चलो, वहां तुम्हें मां से लेकर और पैसे दूंगा।

इलाइजा सहम गई। उसने नेपोलियन से कहा, "तुम यह सब मां को

बताओगे ! तब तो हमें दण्ड भुगतना पड़ेगा । मां हमारा जेब-खर्च बन्द कर देगी ।"

"तो क्या होगा ? हमने जो उसकी हानि की है, उसके दाम तो देने ही चाहिए । कुछ दिन जेब-खर्च न सही ।"

उस किसान लड़की को लेकर वे घर पहुंचे । दरवाज़े पर नौकरानी ने पूछा, "यह कौन चली आ रही है तुम्हारे साथ ?"

नेपोलियन ने सारी बात नौकरानी को बता दी ।

घर की बैठक में नेपोलियन की मां श्रीमती लिटिसिया अपने भाई के साथ बैठी बातें कर रही थी ।

मां ने डांटते हुए कहा, "जब तुम्हें मना किया है कि बगीचे के बाहर खेलने मत जाओ तो फिर क्यों गए ? कहना नहीं मानोगे तो तुम्हारा बगीचे में खेलना भी बन्द कर दूंगी !"

नेपोलियन ने नम्रता से उत्तर दिया, "भूल मेरी ही है । इलाइजा तो मेरे साथ-साथ चली गई । इसमें उसका दोष नहीं है ।"

इलाइजा हक्की-बक्की-सी भाई का मुंह ताकने लगी ।

नेपोलियन का मामा यह सब देख-सुन रहा था । भानजे की सचाई पर वह बहुत प्रसन्न हुआ । उसने बहन से बच्चों को क्षमा कर देने का अनुरोध किया ।

डरी हुई इलाइजा भाई के व्यवहार से कुछ संभली । उसने अपने मामा के कान में कहा, "भाई तो जान-बूझकर मेरा दोष अपने ऊपर ले रहा है । सारा दोष मेरा ही है ।"

इलाइजा के मामा ने उससे सारी घटना बताने को कहा । लड़की ने सारी घटना सच-सच बता दी ।

मां ने बच्चों को स्वयं अपराध स्वीकार करते देखकर क्षमा कर दिया ।

नेपोलियन ने मां से कहा, "मेरा महीने भर का जेब-खर्च मुझे दे दो जिससे मैं इस लड़की के पैसे दे सकूं ।"

मां ने जेब-खर्च के अगले महीने के पैसे देते हुए कहा, "अब महीने भर तुम्हें कोई जेब-खर्च नहीं मिलेगा ।"

नेपोलियन ने स्वीकृति-सूचक सिर हिलाया और पैसे लड़की को दे दिए ।

लड़की को अण्डों का पूरा मूल्य मिल गया । वह नेपोलियन से पहले लिए हुए तीन सिक्कों को लौटाने लगी । नेपोलियन ने वे सिक्के भी वापस नहीं लिए ।

लड़की के इस अच्छे बरताव से प्रसन्न होकर नेपोलियन की माता ने उसके माता-पिता और घर-बार के बारे में पूछा।

जब लड़की ने बताया कि पिता मर चुके हैं और मां बीमार पड़ी हैं, तो वे सब उसके घर उसकी मां को देखने गए और उसकी दवा-दारू और खाने-पीने का सारा प्रबन्ध कर दिया।

जो पढ़ो, उसको गुणो भी

एक घने जंगल में एक महात्मा रहते थे। घास-फूस की छोटी-सी उनकी कुटिया थी। कुटिया के आंगन में धूनी के पास बैठे वे अपना सारा समय परमात्मा के भजन-कीर्तन में लगाते थे। आस-पास के गांवों के लोग उनके दर्शनों को आते। वे ही महात्माजी के लिए फल, कन्द-मूल और भोजन जुटाते। उनकी कुटिया के पास जंगली जानवर घूमते रहते। पर क्या मजाल कि कभी किसी को सताएं। यह उनके तप का ही प्रभाव था, हिरन और बाघ भी वैर भूलकर एक साथ घूमते-फिरते।

पंछी उनके आस-पास फुदकते रहते। महात्माजी भोजन करने बैठते तो आधा भोजन इन पंछियों को ही खिला देते।

एक दिन की बात है, एक तोता आंगन में आकर बैठा। धीरे-धीरे वह महात्माजी के पास आ गया। तोता बोला, "महात्माजी, मैं आपका चेला बनना चाहता हूं। मुझ पर कृपा कीजिए। मुझे ज्ञान का उपदेश दीजिए। जैसे आप कहेंगे, मैं वैसा ही करूंगा।"

महात्माजी बोले, तुम्हारे विचार बड़े सुन्दर हैं। तुम पक्षी होकर भी अपना जीवन सुधारना चाहते हो। पर यह कोई सरल काम नहीं है। बहुत मेहनत करनी पड़ेगी। क्या यह सब तुम कर सकोगे ?"

"जरूर करूंगा, महाराज ! जैसा आप कहेंगे, वैसा ही करूंगा। आप मुझे अपनी शरण में ले लीजिए।"

साधु महात्मा दयालु तो होते ही हैं। उन्हें तोते पर दया आ गई और

उसे आश्रम में रहने को कह दिया। तोता महात्माजी का चेला बन गया। चेले की शिक्षा आरंभ हुई। महात्माजी ने पहला पाठ पढ़ाया :

"शिकारी आएगा, जाल बिछाएगा।
चुग्गा डालेगा, तुम फंसना मत।।"

फिर बोले, "यह पहली शिक्षा है। इसको ठीक से मन में बिठाओ। अगर तुम इस शिक्षा को सदा याद रखोगे, तो कभी जाल में नहीं फंसोगे और लोभ के कारण जो संकट आते हैं, उनसे बचे रहोगे।"

तरुण तोते ने कहा, "सत्य वचन महाराज ! मैं इस उपदेश को सदा याद रखूँगा।"

उस दिन से तोता इस शिक्षा को याद करने लगा। स्वामीजी के भक्त फल-कन्द-मूल ले ही आते थे। उसमें से महाराजजी तोते को भी दे देते। अब वह आश्रम में एक डाल पर बैठा दोहराता रहता—

"शिकारी आएगा, जाल बिछाएगा।
चुग्गा डालेगा, तू फंसना मत।।"

कुछ दिन लगातार मेहनत करने से यह पाठ तोते को याद हो गया। वह बहुत प्रसन्न हुआ।

महात्माजी के पास कोई भक्त बैठा था। जब वह उठकर गया तो तोता डाल से उड़कर गुरु महाराज के पास पहुंचा। उन्हें नमस्कार किया।

आशीर्वाद देकर उन्होंने पूछा, "बच्चा, ठीक हो न ? यहां तुम्हें कोई कष्ट तो नहीं है ? तुम्हें जो शिक्षा दी थी, वह याद है न ?"

"आपकी कृपा से बड़े मजे में हूं। आपकी शिक्षा को मैंने अच्छी तरह याद कर लिया है।" तोता बोला।

"अच्छा, यह तो बड़ी अच्छी बात है। हां, तो ज़रा दोहराओ, मैं भी सुनूं।" महात्माजी ने बड़े प्यार से कहा।

तोते ने शिक्षा को अच्छी तरह दोहराकर सुना दिया। महात्माजी ने कहा,

जब तुम चाहो तो स्वतंत्र होकर जंगल में विचरण कर सकते हो। फिर कभी जरूरत समझो तो यहां चले आना। इस शिक्षा को सदा याद रखोगे तो कभी धोखा नहीं खाओगे। जाओ, भगवान् तुम्हारा कल्याण करें।"

तोते ने झुककर प्रणाम किया और फुर्र से उड़कर जंगल में दूसरे तोतों से जा मिला।

एक बूढ़े तोते ने उसे इतने दिनों बाद आया देखकर पूछा, "अरे बेटा, इतने दिन कहां रहे ? कुशल-मंगल तो है न ? भले पंछी ! बताकर तो गए होते।"

"ताऊजी, क्या बताऊं, एकाएक ही मन में कुछ ऐसा विराग आया कि उस ओर झरने के पास जो एक पहुंचे हुए महात्माजी रहते हैं, उनकी शरण में चला गया था। मैंने उन्हें गुरु धारण कर लिया है। सो, कुछ दिन गुरुजी के सत्संग का लाभ उठाया और उपदेश सुनकर आज उनकी आज्ञा से लौटा हूं।"

इस बीच और भी कई तोते उसकी बात सुनने के लिए आस-पास से उड़कर आ गए थे और बड़े ध्यान से उसकी बातें सुन रहे थे। उनमें से एक बोला, "भाई, महात्माजी से क्या सीखकर आए हो, कुछ हमें भी तो बताओ ?"

उसने झट से रटा हुआ पाठ सुना दिया—

"शिकारी आएगा, जाल बिछाएगा।
चुग्गा डालेगा, तुम फंसना मत॥"

जितने तोते सुन रहे थे, सभी को यह शिक्षा काम की लगी। छोटे-बड़े सभी कहने लगे, "हमें भी सिखाओ, हमें भी सिखाओ !"

तब वह बोला, "देखो, यह काम इतना सरल नहीं है, जितना तुम समझ रहे हो। तुम्हें प्रतिदिन अभ्यास करना होगा। एक बात और सुन लो। मैं सबको अलग-अलग तो सिखा नहीं सकता। एक समय निश्चित कर लो और सभी इस पीपल के वृक्ष पर आ बैठो। जो मैं कहूं उसको दोहराते जाना।"

सभी लोगों ने उसकी बात मान ली। दूसरे दिन से जिस तरह गुरुजी

पाठशाला में कक्षा को पढ़ाते हैं, यह तोता दूसरे तोतों को पढ़ाने लगा। कुछ समय के अभ्यास के बाद सभी को पाठ याद हो गया। इसी तरह एक-दूसरे से सीखते हुए जंगल के सारे तोतों ने याद कर लिया कि :

"शिकारी आएगा, जाल बिछाएगा।
चुग्गा डालेगा, तुम फंसना मत ॥"

अब जंगल के सभी तोते, जो आगे 'टें-टें' का शोर मचाते रहते थे, नई सीख को दोहराने लगे।

और एक दिन :

पंछियों को पकड़ने वाला एक बहेलिया कंधे पर जाल उठाए, बगल में बड़ा-सा झोला लटकाए, डंडा हाथ में लिए जंगल में घुस आया।

जब वह घने जंगल में पहुंचा तो क्या सुनता है कि तोते जोर-जोर से उसी पाठ को दोहरा रहे हैं :

"शिकारी आएगा, जाल बिछाएगा।
चुग्गा डालेगा, तुम फंसना मत ॥"

सुनने के बाद क्षण भर तो उसकी समझ में ही नहीं आया कि मामला क्या है ! अपने ही कानों पर उसे विश्वास नहीं हुआ। पर जब उसने आवाज की दिशा में देखा तो पता लग गया कि यह तो इन तोतों की करतूत है।

वह वहीं खड़ा हो गया और आश्चर्य से तोतों की इस विचित्र बात को सुनता रहा। अब उससे खड़ा नहीं रहा गया। उसे लगा कि सिर चकरा रहा है। वह बैठ गया।

बैठकर जब उसने नए सिरे से सारी बात पर विचार किया तो उसके पांव के नीचे की मिट्टी सरक गई। उसे लगा कि ये तोते तो मुझे बाल-बच्चों समेत भूखों मरने पर विवश कर देंगे।

जाल अभी लिपटा रखा है, चुग्गा थैले में है किन्तु इन तोतों को पहले ही

पता लग गया कि यह कुछ होने वाला है। अब मेरे जाल में कोई पंछी क्यों फंसने लगा ! अब तो गए कमाने-खाने से।

वह उठा और पिछले पांव लौट चला। उसे पूरा विश्वास हो गया था कि इस जंगल में अब मेरी दाल नहीं गलेगी। क्यों व्यर्थ समय नष्ट करूं ? भूखा-प्यासा, निराशा का मारा वह सोचते-सोचते चला जा रहा था।

उसे जंगल में महात्माजी की कुटिया दिखाई दी। दो घूंट पानी पीने के लिए वह वहां चला गया। पानी पीकर सुस्ताने बैठा। उसके चेहरे पर छायी हुई निराशा स्पष्ट दिखाई दे रही थी। दयावान् महात्माजी ने उससे चिन्ता का कारण पूछा। तब उसने सारी आपबीती कह सुनाई और महात्माजी से प्रश्न किया, "महाराज, ऐसी विचित्र बात तो कभी देखी-सुनी नहीं थी। मेरी सारी उमर जंगलों में पंछियों को पकड़ते बीत चली पर ऐसा तो कभी नहीं हुआ।"

"तो तुम उनकी बात सुनकर बिना जाल फैलाए वापस चले आए?" महात्माजी ने पूछा।

"हां, महाराज ! अब वहां जाल फैलाने से लाभ क्या ? कौन मेरे जाल में फंसेगा ?" बहेलिये ने उत्तर दिया।

"अरे नहीं, तुम्हें प्रयत्न तो करना चाहिए था। दूसरों को इस बात से मत परखो कि वे क्या कहते हैं, यह देखो कि वे क्या करते हैं। प्राणियों की कथनी और करनी एक-सी कहां होती है। मेरी बात मानो तो घर मत लौटो। जाओ और जाल बिछाओ, देखो क्या होता है।" महात्माजी ने समझाया।

घर लौटता बहेलिया फिर जंगल को लौट चला। वह उसी जगह जाकर रुका जहां तोतों को बोलते सुना था। तोते अब भी उसी तरह बोल रहे थे। उसने उनके बोलने की रत्ती भर परवाह नहीं की। जाल बिछाया, फंदा लगाया, जाल के नीचे चुग्गा डाला और अपने आप एक झाड़ी के नीचे छिपकर बैठ गया।

तोतों ने चुग्गा देखा तो उनके मुंह में पानी आ गया। अब तो पाठ को दोहराना बन्द करके बिना सोचे-विचारे डालों से उड़कर चुग्गा खाने पहुंचे।

बहेलिया का मनचाहा हो गया। उसने अवसर देखकर जाल समेट लिया। कितने ही तोते उसमें फंस चुके थे। इनमें महात्माजी का चेला भी था। बहेलिया इन तोतों को नगर में बेचेगा। जो पैसे मिलेंगे, उनसे खाने-पीने का सामान लाएगा।

जाल समेटते ही पहले तो तोते घबराए। पर उन्हें मारा नहीं गया। वे तो पालने वालों के पास बेचे जाने वाले थे। अब जाल में घिरे-घिरे वे अपना पाठ दोहराने लगे। बहेलिया उनके पाठ को सुनकर उनकी मूर्खता पर मुसकराता चलता रहा।

रास्ते में महात्माजी की कुटिया आयी। बहेलिया महात्माजी की सलाह मानकर ही तोतों को पकड़ पाने में सफल हुआ था, इसलिए वह उनके उपकार को स्वीकारने के लिए उनके पास गया।

उस तोते ने झट पहचान लिया कि यह तो गुरु महाराज की कुटिया है। अब तो वह और भी जोर-जोर से बोलने लगा। दूसरे तोते भी दोहराने लगे।

महात्माजी दिखाई दिये तो चेला तोते ने उन्हें प्रणाम किया और बोला, "मुझे आपकी शिक्षा अच्छी तरह याद है। मैंने उसका खूब प्रचार किया। जंगल के सभी तोतों को याद करा दिया है।" यह कहते हुए उसने गुरु की सीख दोहरा कर सुना दी।

गुरुजी को उसकी मूर्खता पर क्रोध भी आया पर उसकी हालत देखकर उनका दिल पिघल गया। वे उसे फटकारते हुए बोले, "सीख रटने के लिए नहीं होती है। उसके अनुसार आचरण करना होता है। जो पढ़ो, उसको गुणो भी। अर्थात् अपने जीवन में करके भी दिखाओ। परिणाम तुम्हारे सामने है। तू स्वयं भी जाल में फंसा और तेरे पढ़ाये हुए संगी-साथी भी। तूने गुरु की सीख

को ठीक से नहीं समझा और स्वयं दूसरों को उपदेश देने लगा। यही तेरी भूल थी।"

अब उसे अपनी भूल समझ में आयी। वह गुरुजी से गिड़गिड़ाकर बोला, "महाराज! अब की प्राण बचें तो दोबारा कभी भूल नहीं करूंगा।"

महात्माजी के कहने से बहेलिये ने उन्हें छोड़ दिया। बहेलिये को घर ले जाने के लिए महात्माजी ने कुछ फल-कन्द-मूल दिये। वह प्रसन्न होकर अपने घर लौट गया।

भाग्य नहीं, पुरुषार्थ

आचार्य चाणक्य के बचपन की घटना है । ये वही आचार्य चाणक्य हैं, जो चन्द्र-गुप्त मौर्य के महामंत्री थे । पर इतना भर कहने से काम नहीं चलेगा । आचार्य चाणक्य चन्द्रगुप्त मौर्य के गुरु भी थे । चन्द्रगुप्त मौर्य के साम्राज्य की स्थापना चाणक्य द्वारा ही हुई थी ।

चाणक्य का चेहरा बड़ा भद्दा था । काला रंग, टेड़े-तिरछे दाँत, मोटे होंठ और नाक; आँखें भी कोई सुन्दर नहीं थीं । जो देखता, नाक-भौंह सिकोड़ लेता । पर जहां तक बुद्धि का सम्बन्ध था, स्याने भी मात खा जाते ।

वे पिता के पास बैठे कुछ पढ़ रहे थे । उमर यही कोई दस बरस थी । इसी समय कोई भविष्य बताने वाला ज्योतिषी आ गया । उसे बैठने के लिए आसन दिया । यह सुस्ताने लगा । पिता-पुत्र आपस में बातें कर रहे थे । ज्योतिषी महाराज ने बात करते चाणक्य के दांत देखे । दाँत तिरछे-टेढ़े थे । ज्योतिषी महाराज चाणक्य के पिता से बोले, "ब्राह्मण देवता ! तुम्हारा यह पुत्र बड़ा होकर महापुरुष बनेगा, महापुरुष । सरस्वती इसकी जिह्वा पर विराजेगी । इसकी बुद्धि की थाह कौन पाएगा !" फिर ज्योतिषी महाराज कुछ देर उसके मुंह की ओर देखते रहे । फिर कहने लगे, "बड़ा दृढ़-प्रतिज्ञ होगा । जो कहेगा, कर दिखाएगा ।"

चाणक्य के पिता नें पूछा, "आपने इसमें ऐसा कौन-सा लक्षण देखा ?"

ज्योतिषी जी कुछ मुसकराकर बोले, "इस के निचले जबड़े के अगले दांतों

को देखो, हैं न टेढ़े । बस यह एक ही लक्षण पर्याप्त है ।"

बस, इतना सुनना था कि बालक चाणक्य अपनी जगह से झट उठ खड़ा हुआ । बाहर जाकर उसने एक पत्थर उठाया और अपने तिरछ-टेढ़े दांत तोड़ डाले । अगले दांतों के टूट जाने से उसका चेहरा और भी कुरूप हो गया । मुंह से खून बहने लगा । फिर वह ज्योतिषी जी से बोला, "क्या अब मैं महापुरुष नहीं बन सकूंगा ?"

इतिहास साक्षी है कि वह बालक अपनी बुद्धि के बल पर चन्द्रगुप्त मौर्य को सम्राट बनाने में समर्थ हुआ । उसने पराक्रमी सिकन्दर की बढ़ती सेना को रोका और वापस लौटने को विवश किया । आज भी हम उसे महापुरुष के रूप में याद करते हैं ।